# निमित्ताधीन दृष्टि

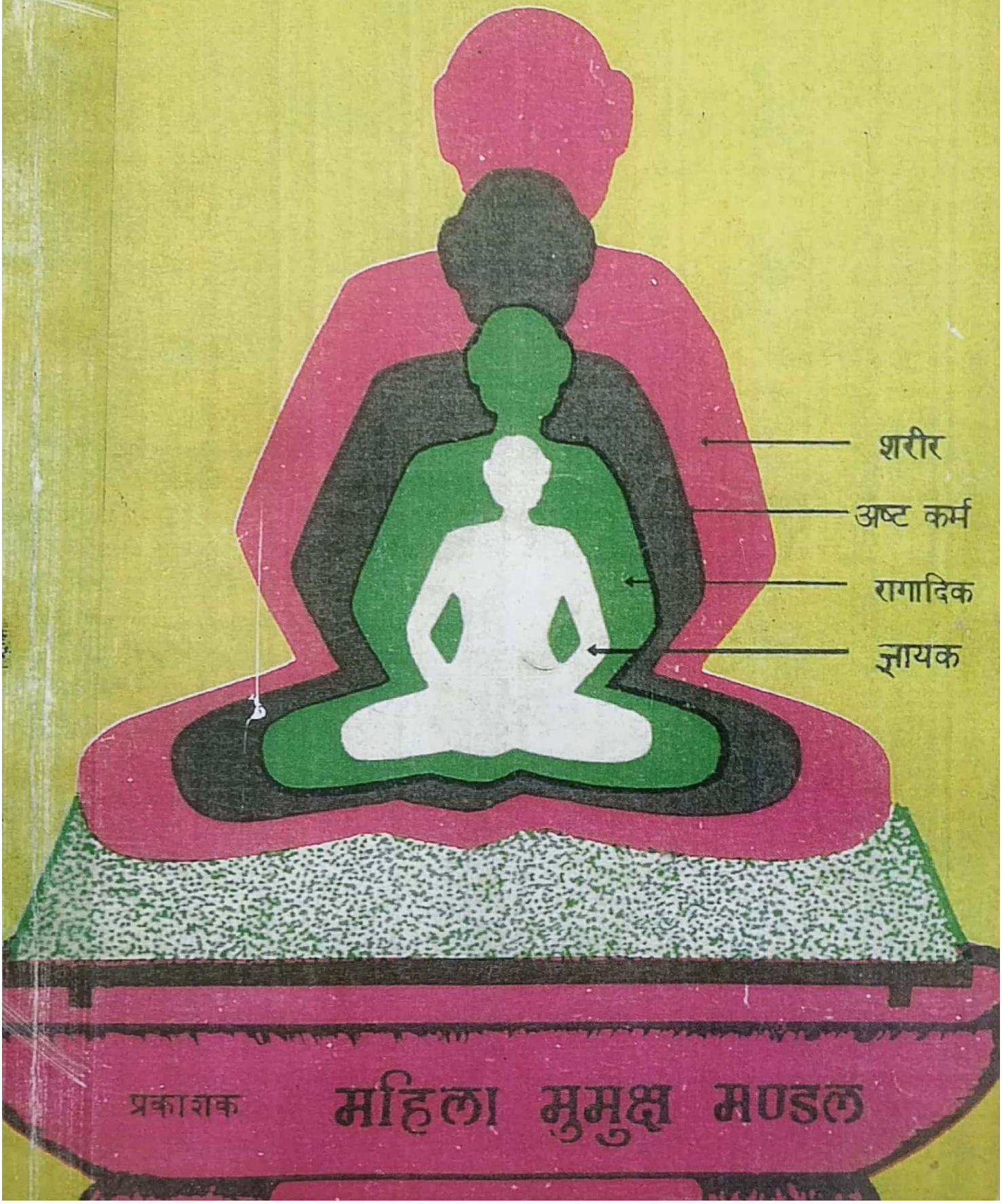


प्रकाशक महिला मुमुक्षु मण्डल

Scanned by CamScanner

# निमित्ताधीन दृष्टि

❀ श्री बाबूलाल जैन कलकत्ते वाले

निमित्त के बारे में अनेकों प्रकार की चर्चा समय-समय पर हुई है, परन्तु ऐसा लगता है कि निमित्त को कर्त्ता मानने वाले अभी भी निमित्त को कर्त्ता मानते जा रहे हैं। प्रश्न अभी खड़ा ही हुआ है, समाधान नहीं हो पा रहा है। समाधान होने के बाद अगर कोई सही बात को न माने तब तो यह उसकी खुशी है, परन्तु समाधान इस ढंग का होना चाहिए जो न्याय, युक्ति और तर्क से हमारे जीवन के हर स्थल पर सही उतरे। अगर वह सही उतरता है तो आगम से भी उसका मिलान अवश्य बैठेगा। आज इसके बारे में कुछ विचार करते हैं, विद्वान लोग सही-गलत का निर्णय करें। यह बात तो निश्चित ही है कि निमित्त कर्त्ता नहीं हो सकता। कर्त्ता की परिभाषा है कि जो परिणमन करे वह कर्त्ता। कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्य का अथवा अन्य द्रव्य की पर्याय का परिणमन कराने वाला नहीं हो सकता। यदि कोई अन्य द्रव्य को अन्य द्रव्य अथवा उसकी पर्याय का कर्त्ता माने तो दो द्रव्यों में एकत्वपना होकर मिथ्यात्व की पुष्टि हो जाएगी। इसीलिए जैन शासन में भगवान को कर्त्ता नहीं माना है। अगर कोई भगवान को

Scanned by CamScanner

कर्त्ता मानते हैं तो चूंकि भगवान भी हमारी आत्मा के लिए अथवा अन्य पुद्गलादि के लिए अन्य द्रव्य हुए और यदि भगवान उनका कर्त्ता है, तो वे भगवान के साथ एकत्वपने को प्राप्त हो जायेंगे। इस प्रकार भगवान के कर्त्तापने के निषेध के द्वारा समस्त निमित्तों के कर्त्तापने का निषेध किया गया है।

अगर निमित्त को कर्ता माना जाएगा तो जो कार्य निमित्त ने किया है अथवा निमित्त की वजह से किया गया है वह उसी के द्वारा मैटा जा सकता है। अगर राग की उत्पन्नकर्त्ता स्त्री है तो राग को मिटाने वाली भी वही होगी। उसकी इच्छा के बिना राग नहीं मिट सकता। अगर ऐसा माना जाएगा तो आत्मा की मोक्षप्राप्ति अथवा स्वर्ग, नरक की प्राप्ति भी पराधीन हो जाएगी। राग की उत्पत्ति में भी आत्मा का कोई दोष नहीं होगा क्योंकि राग का कर्त्ता कोई और होगा, जैसा आजकल कहते हैं कि ब्लैक के पैसे का आहार दे दिया इस-लिए हम लोग शिथिलाचारी हो गए। अब उनका ठीक होना गृहस्थों के आधीन है अगर गृहस्थ चाहेंगे तो उनका शिथिलाचार मिटेगा, नहीं चाहेंगे तो नहीं मिटेगा। परन्तु नरक निगोद में गृहस्थ नहीं जाएगा शिथिलाचारी ही जाएगा, ऐसा शायद वे नहीं मानते।'

अगर राग-द्वेष का कर्त्ता दूसरा है तो संसारी आत्माओं को राग द्वेष के अभाव करने का भी उपदेश नहीं देना चाहिए, क्योंकि वे क्या कर सकते है। संसार में दूसरा द्रव्य तो रहेगा ही और वह जैसा कराएगा वैसा ही करना पड़ेगा क्योंकि हमारे अच्छे-बुरे का कर्त्ता तो इस मान्यता के अनुसार दूसरा ही ठहरा।

Scanned by CamScanner

उसी प्रकार क्योंकि हम भी अन्य के लिए पर हैं इसलिए उस पर का भला-बुरा भी हमारे हाथ में होगा, हम जैसा चाहेंगे वैसा उसका परिणमन करा देंगे। इसी का नाम अहंकार है। क्योंकि जब मैं पर का कर्त्ता हूं—हो सकता हूं, पर मेरा कर्त्ता हो सकता है तब पर के कर्त्तापने का अहंकार मेरा भी नहीं मिट सकता और दूसरों का भी नहीं मिट सकता। इस प्रकार एक स्त्री सड़क पर जा रही है उसको पता भी नहीं है कि उसको कौन देख रहा है और देखने वाला रागी हो जाता है और कहता है इस स्त्री ने राग करा दिया। क्या यह सत्य है ? यह तो वही बात हुई कि "अन्धेर नगरी चौपट राजा"। अगर किसी की दीवार गिर कर बकरी मर गयी तो दोष मसक बनाने वाले का है क्योंकि मसक बड़ी बन गई। क्या इसी का नाम जैन धर्म की दार्शनिक विचारधारा है ? क्या इसी के बल पर हम परमात्मा बनने की सोच रहे हैं ?

फिर सवाल पैदा होता है कि अन्य द्रव्य कर्त्ता तो नहीं है परन्तु कराता तो है, इसलिए उसी का दोष है। इस विषय में भी आचार्यों का दृष्टिकोण स्पष्ट है कि हरेक वस्तु में अपनी शक्तियां हैं। कोई द्रव्य अन्य वस्तु में कोई शक्ति उत्पन्न नहीं कर सकता। अगर किसी वस्तु में निज में कोई शक्ति नहीं है तो अन्य वस्तु के हजारों चेष्टा करने पर भी वह उस वस्तु में उस शक्ति को पैदा नहीं कर सकता। अगर अन्य वस्तु अन्य वस्तु में नई शक्तियां पैदा कर दे, तो चेतना जड़ हो जाए और जड़ चेतन हो जाए। फिर सवाल पैदा होता है कि उस वस्तु में शक्ति हो तो क्या दूसरी वस्तु कुछ करती है

Scanned by CamScanner

अथवा दूसरेकी वजह से कुछ होता है ? यह सवाल ही अब उत्पन्न होने की गुंजायश नहीं रहती क्योंकि वस्तु अपनी शक्ति रूप से परिणमन कर रही है। फिर सवाल पैदा होता है कि तब क्या निमित्त का कार्य में कोई सहयोग है या नहीं। अगर नहीं है तो उसको निमित्त भी क्यों कहा जाता है ? और फिर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध क्या है ?

अगर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध न हो तो संसार कायम नहीं होगा और यदि निमित्त नैमित्तिक संबंध को कर्त्ता कर्म संबंध मान लिया तो संसार का कभी अभाव नहीं होगा। आचार्यो ने परद्रव्य की पर्याय के साथ अन्य द्रव्य की पर्याय का जहां कहीं कोई भी सम्बन्ध या सहयोग माना वह सब निमित्त नैमित्तिक संबंध के दायरे में ही आता है। कर्त्ता कर्म संबंध के दायरे में कोई भी सम्बन्ध किसी भी प्रकार का दूसरे द्रव्य के साथ नहीं हो सकता। निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध में उपादान और निमित्त स्वतंत्र होते हैं, पराधीनता का सवाल नहीं होता। अब यह विचार करना है कि निमित्त का हमारे जीवन अथवा आत्मकल्याण में कोई सहयोग है या नहीं ?

निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध दो द्रव्यों की पर्याय में होता है। दो द्रव्यों में नहीं होता क्योंकि द्रव्य नित्य होता है अगर द्रव्यों में माना जाएगा तो द्रव्यों का नाश नहीं होने से निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध का भी नाश नहीं हो सकेगा।

निमित्त को तीन भागों में बांटा जा सकता है (१) धर्म, अधर्म, ाकआश, काल का निमित्तपना (२) बाकी सब, वस्तुओं जिनमें बाहरी

Scanned by CamScanner

पदार्थ, पुद्गलादि, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अन्य जीव आत्माएं, देव, शास्त्र, गुरु सभी आ जाते हैं—के साथ निमित्त नैमित्तिक पना। (३) संसारी आत्मा का अष्ट प्रकार के कर्मों के साथ निमित्त नैमित्तिपना। इन तीनों का सामान्य स्वरूप एक ही प्रकार का होते हुए भी विशेष रूप से विचार करने पर कुछ अन्तर है। जब जीव और पुद्गल अपनी क्रियावती शक्ति से एक जगह से दूसरी जगह जाते है तो धर्म द्रव्य स्वतः अपने आप निमित्त रूप रहता है। वैसे ही जब से ठहरते है तो अधर्म द्रव्य निमित्त रूप रहता है। जब आप अपनी परिणमन शक्ति से द्रव्य परिणमन करता है, तो काल, द्रव्य निमित्त रहता है। और अवगाहना में आकाश द्रव्य निमित्त है ही। अनुकूल निमित्त के उपस्थित रहने वाली परिभाषा इसी संदर्भ में लागू होती है।

दूसरे प्रकार के निमित्तपने में मात्र अनुकूल उपस्थिति की ही बात नहीं है, परन्तु उपादान जिस वस्तु की पर्याय का जिस कार्य के लिए अवलम्बन लेता है, उस-रूप वह आप ही परिणमन करता है। वह अवलम्बन चाहे बाहर में अन्य वस्तु की उपस्थिति में हो अथवा अपने अन्तरंग में उस वस्तु की अपने विकल्पों में उपस्थित करके हों। पर का अवलम्बन उपादान ही लेता है और जिस दृष्टिकोण से लेता है वह भी उसी पर निर्भर है जब वह ऐसा करता है तब वह स्वयं ही रागरूप परिणमन करता है। अब सवाल पैदा होता है कि क्या इस प्रकार से निमित्त ने कुछ सहायता की ? उत्तर है कि नहीं; निमित्त ने कुछ सहायता नहीं की। परन्तु जब उपादान ने उसकी

Scanned by CamScanner

सहायता ली, तब उपचार से कहा जाता है कि 'निमित्त ने सहायता की ।' यह कथन मात्र उपचार है, व्यवहार है । ऐसा मात्र निमित्त की प्रधानता दिखाने को कहा जाता है । जो कि लौकिक व्यवहारीजनों की भाषा है । अगर हम निमित्त की सहायता न लें तो कार्य नहीं होगा, इसलिए हमारे ऊपर ही सब दारमदार है । नीचे दिये गये उदाहरणों द्वारा यह बात स्पष्ट हो जायेगी ।

एक व्यक्ति चश्मा लगाता है । यहां चश्मा उस व्यक्ति को नहीं दिखाता । अगर चश्मा दिखावे तो पत्थर की मूर्ति को भी दिखा देवे । चश्मे से दिखता है ऐसा भी नहीं है अगर चश्मे से दिखे तो यदि कोई आंख बंद करके चश्मा लगा ले तो उसको भी दिखने लगता । तब क्या कहा जावे ? चश्मे का अवलम्बन हमने लिया उस प्रकार से लिया जिससे देख जा सके, और चश्मा लगाकर हमने देखा । तब यह कहा जाता है कि चश्मे ने दिखा दिया, यह उपचार कथन है । चश्मे का लगाना हमारी कमी को बता रहा है कि हमारी आंख में कमजोरी है । फिर सवाल पैदा होता है कि यद्यपि चश्मे ने नहीं दिखाया और न ही चश्मे मात्र से दीखा परन्तु चश्मे के बिना भी तो नहीं देखा जा सकता । यह बात सही है कि अगर आंखें कमजोर हैं तो देखने के लिए चश्मे के बिना नहीं देखा जा सकता । यह समझ कर यदि वह अपनी आंखों की कमजोरी को दूर कर लें तो चश्मे की जरूरत नहीं रहेगी । इसी प्रकार एक लकड़ी है यदि हमसे चला नहीं जाता तो हम उसका सहारा लेते हैं और चलने के लिए लेते हैं । कंधे पर नहीं रख लेते हाथ में उस

Scanned by CamScanner

प्रकार लेते हैं जिससे कि वह चलने में सहायक हो और उसका अवलम्बन लेकर हम चलते हैं। उसने सहयोग नहीं दिया परन्तु हमने सहयोग लिया और हम ही चले। फिर अपनी शक्ति को बढ़ाते जाते हैं और उसका अवलम्बन छोड़ते जाते हैं। जब हमारी शक्ति का पूर्ण विकास हो जाता है तो हमारा पर का अवलम्बन छूट जाता है। किसी ने माचिस दी, हम चाहें तो उसके द्वारा आग लगा सकते हैं, चाहे खाना पका सकते हैं यह सब हमारे पर निर्भर है। इसी प्रकार लकड़ी से किसी को मार सकते हैं, लकड़ी को आग में जला सकते हैं, और उसका सहारा लेकर चल भी सकते हैं। उसमें जो-जो पर्याय योग्यताएं है उनमें से किसी कार्य के लिए भी अवलम्बन लिया जा सकता है।

देवशास्त्रगुरू का अवलम्बन हम लेते हैं। वहां बाहर में देव-दर्शनादिक द्वारा इनका अवलम्बन लेते हैं अथवा अपने उपयोग में, ज्ञान में उनका अवलम्बन लेते हैं। उनके सही स्वरूप का ज्ञान न होने पर संसार-शरीर-भोग और मान-बड़ाई के लिए भी ले सकते हैं, पुण्य के लिए भी ले सकते हैं, और उनके सही निमित्तपने का ज्ञान होने पर भेद विज्ञान के लिए भीं ले सकते हैं। यह भी हमारे पर निर्भर करता है। फिर जिस अभिप्राय से अवलम्बन लिया उस रूप का हमीं परिणमन करते हैं तब उपचार लागू पड़ता है कि भगवान ने किया अथवा भगवान की वजह से हो गया। कुदेव, कगुरू, कुशास्त्र में सम्यक्दर्शनादि अथवा भेदविज्ञान रूपी कार्य के निमित्तपने की योग्यता नहीं है, मिथ्यात्वादि रूप या संसार-शरीर-भोगों के निमित्तपने की योग्यता है, अतः उनका निषेध किया गया। सच्चे

Scanned by CamScanner

देवशास्त्र गुरू के अवलम्वन का उपदेश दिया गया। हमारे में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि उस अवलम्बन के बिना अपने स्वभाव को देख सके। जब तक उस रूप की योग्यता नहीं बनती तब तक उनका अबलम्बन लेते हैं, जब ऐसी योग्यता बना लेते हैं कि उनके बिना भी अपने आपको देख सके तब उसके अवलम्बन की कोई दरकार नहीं रहती। परन्तु फिर भी जब स्वभाव से हटे तब फिर भावों के नीचे गिरने से रोकने के लिए उनका अवलम्बन लेना पड़ता है। यदि वस्तु स्थिति ऐसी है तो फिर निमित्त को अच्छा-बुरा कहने का क्या प्रयोजन है ? मान लीजिये कि किसी ने गाली निकाली गाली ने क्रोध नहीं कराया। गाली ने यह भी नहीं कहा कि तू मुझे सुन, यह जीव आप ही कान में आये हुए शब्द वर्गणा को सुनने को गया। यह भी इसी पर निर्भर है कि उसको इष्ट माने या अनिष्ट, इसनेही अनिष्ट माना और इसी ने ही कषाय रूप परिणमन किया। गाली निकालने वाले ने क्या किया ? उसने तो मात्र अपना परिणमन किया। यहां पर भी निमित्त की आधीनता नहीं है। समूचा जोर उपादान पर ही आ रहा है। देवशास्त्रगुरू को इष्ट निमित्त कहा सो भी इसलिए कि वे कषाय के न होने में अवलम्बन है इसलिए उन्हें उपचार से इष्ट कहा है, मूल में तो ये इष्ट नहीं है परंतु कषाय का मंद होना या बिल्कुल न होना इष्ट है। इसी प्रकार कुदेवादि अनिष्ट नहीं है परंतु वे कषाय के होने में सहयोगी है और कषाय का होना अनिष्ट है इसलिए इन्हें उपचार से अनिष्ट कहा है।

उपादान जिस रूप परिणमन करने के सन्मुख होता है वह बाहरी पदार्थों को उसी रूप के कार्य के लिए सहयोगी बनालेता

Scanned by CamScanner

है। हमारे में एक धारणा बनी हुई है कि कोई गाली दे तो क्रोध करना ही है, यही कारण है कि ऐसा संयोग जुड़ते ही अपनी धारणा के वशीभूत हम बिना सोचे समझे क्रोध कर लेते हैं। हम उसका अवलम्बन लेने को तैयार ही रहते हैं और अनिष्टपना पहले से मान रखा है। इसलिए ऐसा लगता है कि इसके गाली निकालने से क्रोध हुआ या क्रोध किया। परन्तु, गहराई से देखा जावे तो इसका पहले से नक्की किया हुआ है कि ऐसा होने पर ऐसा करना। यदि हम इस गलत मान्यता को तोड़े और यह निर्णय ले कि कोई गाली निकालेगा तब भी मैं चाहूं तो शांत रह सकता हूं ? मुझे आज ऐसा ही शान्त रहना है, इस प्रकार की चेष्टा इसकी पहले की मान्यता अथवा आदत को तोड़ती है। यही बात सब बातों में लागू पड़ती है। जब तक कमजोर अवस्था है तब तक जाने-अनजाने उस वस्तु का बाहर में संयोग नहीं होने पर भी हम उनका अवलम्बन ले लेते है और राग रूप परिणामन कर जाते हैं। जब तक इसकी यह हालत है तब तक इसकी अपनी कमजोरी की वजह से इसको मना किया है कि ऐसे संयोग में न जा, न अपने उपयोग में इनका अवलम्बन ले। यह इस वजह से नहीं कि वे हमारा बुरा कर देंगे परन्तु उनके संयोग के सद्भाव में तू अपनी कमी-कमजोरी के कारण अपना बुरा कर लेगा, अथवा अच्छे संयोगों में तू चाहे तो अपना भला कर सकता है।

अब एक सवाल यह है कि कार्य होने के बाद निमित्त कहलाता है अथवा पहले से ही निमित्तपना है। यदि कार्य होने के बाद निमित्त कहा जाता है, तो मन्दिर में जाना चाहिए, शास्त्र-स्वाध्याय करना

Scanned by CamScanner

चाहिए इत्यादि कहना ठीक नहीं होगा क्योंकि अभी तो कार्य हुआ ही नहीं। इसका उत्तर है कि एक सामान्य कथन है और दूसरा एक व्यक्ति अथवा कार्य विशेष की अपेक्षा कथन है। सामान्य कथन में कोई कार्य हो या न होना उसमें उसरूप के निमित्तपने को देख कर आचार्यों ने उस कार्य के लिए उनका सहयोग मिलने का उपदेश दिया। मुलैठी में कफ गलाने की शक्ति है। किसी का कफ गले या न गले, उसकी शक्तिका निषेध नहीं कर सकते। वह पंसारी की दुकान में पड़ी है तब भी उसमें वह शक्ति विद्यमान है और इसी वजह से वैद्य किसी का कफ गलाने को उसका उपयोग बताता है जबकि अभी कार्य तो हुआ भी नहीं है। परन्तु रोगो विशेष के लिए निमित्त वह तभी कहलाएगी जब उसका कफ गलेगा। परन्तु कफ गलाने का निमित्तपना उसमें है यह मानकर चलना होगा। यही बात देवशास्त्रगुरु के प्रति है, इसलिए उनके अवलम्बन का उपदेश दिया गया है।

अब एक अन्य प्रश्न उठता है कि किसी को निमित्त बनावे या न बनावे, क्या यह हमारी स्वतन्त्रता है या निमित्त के उपस्थित होने पर हमें उसको निमित्त बनाना ही पड़ेगा ? ऐसा नहीं है, निमित्त तो हर दम उपस्थित ही है, उपस्थिति में निमित्त बनाना ही पड़े तो संसार से वस्तुओं का अभाव तो होगा नहीं, निमित्तों की उपस्थिति भी मिटेगी नहीं फलतः हमारा विकार भी मिटेगा नहीं। ज्यादातर उदाहरण जो दिये जाते हैं वे पुद्गल से सम्बन्धित उदाहरण होते हैं। और पुद्गल में अपनी समझदारी नहीं होती। यदि १०० डिगरी

Scanned by CamScanner

गर्मी मिलेगी तो पानी को भाप बनना ही पड़ेगा। किसी ने पानी के बर्तन को आग पर रख दिया तो उस पानी को गर्म होना ही पड़ेगा। घी को धूप में रखा तो उसको पिघलना ही पड़ेगा। इन सबको देखकर हमने भी यह समझ लिया कि हम तो निमित्त के आधीन है। यद्यपि स्फटिक के नीचे डांक लगाने पर लाल होगा ही। परन्तु चैतन्य के बारे में ऐसा नहीं है। पुद्गल के बारे में एक व्यक्ति अलग है जो बर्तन को पानी पर रखता है और पानी और आग के निमित्त नैमित्तिकपने को मिला देता है और कार्य हो जाता है। परन्तु बाहरी संयोय मिलने पर भी चेतन चाहे तो उसका अवलम्बन ले अथवा न ले, और किस कार्य के लिए ले यह भी उसी पर निर्भर है। इसलिए कार्य का होना न होना निमित्ताधीन नहीं रहा परन्तु इसकी अपनी समझदारी के आधीन रहा। इसलिए पुद्गल की स्थिति को देखकर उसी प्रकार की स्थिति चेतन के बारे में नहीं समझना चाहिए। क्योंकि जीव में ज्ञान शक्ति है इसलिए निमित्त बनाना, नहीं बनाना, किस कार्य के लिए उसका अवलम्बन लेना सभी कुछ उसी पर निर्भर है। पुद्गल को वैसा निमित्त वैसे कार्य के लिए मिल जाए, या मिला दिया जाए तो वह कार्य हो जाता है, केवल उपादान में तद्रूप परिणमन की शक्ति होनी चाहिए। इसी वजह से कार के साथ पेट्रोल का निमित्त उसी ढंग से, उसी के रूप से मिला दिया जाता है तो वह कार्यरूप परणित होती है अथवा कहना चाहिए कि पेट्रोल का अवलम्बन पाकर कार अपनी उपादान शक्ति से चली। जब यह कहा जाता है कि गाड़ी उसकी योग्यता से चली, पेट्रोल ने

Scanned by CamScanner

क्या किया ? तब उसका अर्थ यह करना चाहिए कि गाड़ी का पेट्रोल के साथ कर्त्ता कर्म सम्बन्ध नहीं है परन्तु निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध अवश्य है। वहां कर्त्ता कर्म सम्बन्ध का निषेद किया गया है परन्तु निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जरूर है उसका निषेद नहीं है। अगर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध मंजूर कर लेते हैं तब यह कहने का सवाल नहीं होता कि पेट्रोल के बिना आप गाड़ी चलाकर दिखा दें। अगर कर्त्ता कर्म सम्बन्ध नहीं है तो वहां पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध जरूर है अन्यथा कार्य नहीं हो सकता। अगर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कहीं नहीं है तो वहां कर्त्ता कर्म सम्बन्ध जरूर है। जीव के बारे में उसने पर का अवलम्बन लेकर परिणमन किया ऐसा मानना है जबकि पुद्गल ने अवलम्बन पाकर चाहे वह स्वतः मिले या किसी के मिलाने से मिले तब पुद्गल उस कार्य रूप में परिणमन करता है, ऐसा मानना चाहिए।

अब फिर एक सवाल होता है कि जब उपादान को उस रूप परिणमन करना है तो वे सब निमित्त मिलेंगे ही। ऐसा मानने पर भी यह बात तो निश्चित हो गई कि कार्य होने में निमित्त का अवलम्बन है चाहे बात को उपादान की तरह से कहा जावे अथवा निमित्त की तरफ से।

क्या हम बाहिरी निमित्तों को जुटा सकते हैं यह भी एक सवाल खड़ा होता है। उसके बारे में विचार करते हैं कि द्रव्य दृष्टि से तो यह कार्य जीव का नहीं है और जीव यह कार्य कर भी नहीं सकता। परन्तु पर्याय दृष्टि में यह अपने योग उपयोग का जिम्मेदार

Scanned by CamScanner

है और उस योग उपयोग के निमित्तपने से कार्य सम्पादन होते हैं, इसलिए इस दृष्टि से इसको जुटाने वाला और हटाने वाला भी बताया है और इस दृष्टि से इस बात का उपदेश भी दिया है। जब इसके भीतर ज्यादा प्रबलता होती है तो बाहरी निरूपयोगी पदार्थ को भी यह अपने कार्य का निमित्त बना लेता है, जैसे पत्थर की ठोकर लगने पर यह विचार करना कि जो देखकर नहीं चलता उसको ठोकर लगती है इसी प्रकार अगर मैं सावधान नहीं रहता तो कषाय की ठोकर खानी पड़ती है। यहां पर भी उपादान की सभी तरह से स्वतत्रता कायम रहती है।

अब सवाल आता है आठ कर्मों के निमित्तपने का। कोई कह सकता है कि यहां तो जीव पराधीन जरूर होगा; इसी पर विचार करना है। आठ कर्मों में से कुछ पुद्गल विपाकी है, उनका निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध पुद्गल का पुद्गल के साथ है, अतः उनके उदय काल में शरीरादि की अथवा संयोगों की उदयानुकूल स्थिति होती है। हमें विचार उनका करना है जो जीव विपाकी है, जिनके फल से जीव के ज्ञान दर्शनादि गुणों का घात होता है। मुख्य रूप से चार घातियों कर्मों का विचार करना है। उन चारों में से भी मोहनीय कर्म, जो दर्शन मोहनीय और चरित्र मोहनीय के भेद से दो प्रकार का है, वहीं समूचे कर्मों की जड़ है, वही संसार का कारण है। अतः मुख्य रूप से उसी का आत्मा के साथ किस प्रकार का निमित्त नैमित्तक संबंध है यह विचार करना है। एक बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि

Scanned by CamScanner

हरेक कर्म का सम्बन्ध अपने-अपने कार्यों के साथ अलग-अलग है। आत्मा के चरित्र और दर्शन से ही मोह का सम्बन्ध है, अन्य किसी भी कार्य से इस कर्म का सम्बन्ध नहीं है। करणानुयोग का कथन भी व्यवहार दृष्टि से किया गया है सब जगह कर्म के कर्त्तापने की भाषा में ही कथन है। उस उपचार कथन को हमने वास्तविक मान लिया है। परिणमन जीव ने किया, उपचार से कहा गया कर्म ने करा दिया और हमने भी इस कथन को वास्तविक कथन मान लिया। यह नहीं समझा कि यह व्यवहार दृष्टि का कथन है। उसका अर्थ व्यवहार के अनुसार करना चाहिए। सर्वार्थ सिद्धि में पूज्यवाद स्वामी ने उदय की परिभाषा करते हुए कहा है कि "फल, की प्राप्ति उदय है" यानि 'जितना उदय हैं उतनी फल प्राप्ति है' ऐसा नहीं कहा है, परन्तु जितनी फल की प्राप्ति है उतना उदय है। तब सवाल उठता है कि बाकी फल का क्या हुआ जो हमने नहीं लिया। उत्तर है कि उसका उदयाभावी क्षय हो गया अथवा देशघाती आदि रूप होकर निर्जर गया। कर्म अपना समय पूरा होने पर निर्जर होने को आया। हमने जितना फल लिया उतना उदय कहलाया बांकी उदयाभावी क्षय हो गया। अगर ज्यादा लेने की चेष्टा की तो उदीरणा हो गयी। यह हमारे पर निर्भर है कि हम कितना फल लेते है, ज्यादा या कम। सवाल पैदा होता है कि अगर हम बिल्कुल नहीं लें तो क्या कषाय से रहित हो जायेंगे ?

उसका उत्तर है कि इसके लिए आत्मशक्ति की दरकार है

Scanned by CamScanner

जितनी हमारे में आत्मशक्ति है उतनी भी हम पूरी नहीं लगाते। अगर पूरी भी लगा दे तो उतना ही उदयाभावी क्षय होगा जितनी गुणस्थानों के अनुसार आत्मशक्ति है। अगर उससे आगे आत्मशक्ति बढ़ती है तो गुणस्थान भी बदल जाता है। हरेक गुणस्थान में एक कम से कम (Mini) और दूसरी ज्यादा से ज्यादा (Maximum) शक्ति का उपयोग कर सकते हैं। जैसे हमारी शक्ति १ से ४ पाँइट तक है ज्यादा से ज्यादा उस गुणस्थान में हम चार प्वाइट तक शक्ति लगा सकते हैं। अगर हमारे पास ५ से १० तक शक्ति है तो हमारा गुणस्थान दूसरा होगा। एक छह वर्ष का बच्चा एक पत्थर को नहीं हटा सकता है, मात्र हिला सकता है, परन्तु वही बड़ा होकर शक्ति का संग्रह करके उसको उलटा सकता है। यही बात जीव की आत्म शक्ति की है। चौथे गुणस्थान में जितनी शक्ति है उतना ही कार्य कर सकता है। वहां पर जो राग द्वेषादि होते हैं वे उसकी शक्ति की कमी की वजह से होते हैं, उसे उतना फल ग्रहण करना पड़ता है। तब उपचार से कहते हैं कि कर्म ने फल दिया। जब वह अपनी शक्ति आत्मानुभव के द्वारा बढ़ा लेता है तब वही अप्रत्याख्यानावरण—प्रत्याख्यानावरण रूप हो जाती है। चूंकि अब उसमें इतनी शक्ति का संग्रह है कि वह तदरूप फल नहीं लेता है। इस प्रकार से यहां पर भी जीव की स्वतन्त्रता है। कितना फल लेना है यह जीव की शक्ति पर निर्भर है। यही कारण है कि पंचास्तिकाय में आचार्य ने लिखा है कि द्रव्य प्रत्ययों का उदय होने पर भी जीव भाव मोह रूप न परिणमन करें। अब सवाल पैदा होता है कि क्या पुद्गल कर्म में फलदान शक्ति है अथवा वह मात्र थर्मामीटर

Scanned by CamScanner

की भांति है। इसका उत्तर है कि जैसे पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है हरेक चीज को अपनी तरह खैंच लेती है, वैसे ही मोहनीय कर्म में भी संसारी आत्मा को रागद्वेषरूप परिणमन करने में खिचाव की शक्ति है। यह मानना जरूरी है। क्योंकि अगर ऐसा नहीं मानते है तो सम्यक्दृष्टि आत्मा सामायिक कर रहा है, परिणामों को सम्भाल रहा है, स्वभाव की तरफ दृष्टि करने का पूरा पुरुषार्थ कर रहा है परन्तु अनेक प्रकार के ऊल-जलूल विकल्प और विपरीत परिणाम लाख चेष्टा करने पर भी, हो जाते हैं। इससे मालूम देता है कि अपनी आत्म शक्ति से खिचाव ज्यादा है तब वैसा परिणमन कर जाता है। जैसे चुबक और लोहा हैं। लोहा अगर भारी है और चुम्बक में शक्ति कम है तो लोहे को नहीं खैच सकेगा। अगर सूई पड़ी होगी तो उसको खैच लेगा। अथवा एक आदमी एक आदमी का हाथ पकड़कर खींच रहा है यदि वह भी उधर जाना चाहता है तब उस आदमी की और दूसरे आदमी की, दोनों की शक्ति मिल कर खिचाव होगा। अगर वह नहीं जाना चाहता है और अपनी शक्ति को खिचाव से विपरीत दिशा में लगा देता है तो पहले आदमी की शक्ति में से दूसरे की शक्ति कम करने पर अगर पहले वाले में ज्यादा शक्ति बचती है तो उतना खिचाव होगा। मिथ्यादृष्टि उस खिचाव की तरफ जाना चाहता है, अतः कर्मशक्ति और उसकी शक्ति एक दिशा में काम करती है। सम्यक्दृष्टि खिचाव की तरफ नहीं जाना चाहता, अतः जितनी शक्ति उसने खिचाव के विरुद्ध में लगाई उतनी कम होकर केवल बाकी के द्वारा

Scanned by CamScanner

कर्म की तरफ खिंचाव हुआ। ऊपर-ऊपर के गुणस्थानों में आत्म-शक्ति बढ़ती जाती है, अतः कर्म का खिंचाव कम होता जाता है। यहां भी 'कर्म की वजह से उधर गया' यह करणानुयोग का कथन है, और 'अपनी आत्मशक्ति की कमी की वजह से उधर गया' यह अध्यात्म का कथन है। विचार किया जाए तो दोनों कथनों का एक ही अभिप्राय है। जीव की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं है, इसका कारण आत्मवल की कमी है, दूसरे की बरजोरी नहीं है वह पुरुषार्थ पूर्वक आत्म-बल बढ़ा सकता है। अगर आत्मबल नहीं बढ़ाता है तो यह उसकी कमी कही जाएगी। आत्मबल भी क्रम-क्रम से गुणस्थानों के के अनुसार ही बढ़ता है।

अगर जीव प्रायोग्यलब्धि में तत्व चिंतवन में उपयोग लगाता है तो मिथ्यात्व कर्म ढीला पड़ने लगता है और करणलब्धि में अपने स्वभाव को देखने की चेष्टा करता है तो मिथ्वात्व कर्म हटने लगता है। यहां पर समझना चाहिए कि जैसे एक कमरे के किवाड़ बन्द है और कहा जाता है किवाड़ खुले विना कोई बाहर नही जा सकता है, परन्तु साथ में संज्ञी पंचेन्द्रि जीव को यह भी कहा जा रहा है कि तू चाहे तो किवाड़ खोल सकता है, किवाड़ खुले हुए ही हैं मात्र तेरे आगे बढ़ने की देरी है। जिस प्रकार आधुनिक हवाई अड्डों की इमारतों में स्वचालित (**Automatic**) फाटक लगे होते हैं; वह फाटक बन्द रहता है और उसे बन्द देखकर कोई खड़ा रहे तो यह उसकी खुशी है। परन्तु यदि वह आगे बढ़ता जाए तो फाटक स्वतः खुलता जाता है बिल्कुल ऐसी ही व्यवस्था कर्म के साथ में है। सभी कुछ हमारे

Scanned by CamScanner

पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। एक बार राग करने पर आत्मा पर उसी जाति का संस्कार और मजबूत होता है। इस प्रकार हर समय हमारे संस्कार मजबूत होते जाते हैं। जब बहुत मजबूत हो जाते हैं तब आत्मा अपने ही संस्कारों के आधीन हो जाता है और तद्रूप परिणमन अपनी इच्छा के विरुद्ध करने लगता है। यह हमारी अपनी पैदा की हुई पराधीनता है। ऐसे संस्कारों को तोड़ने के लिए इनसे विपरीत संस्कारों के उपाय करने होंगे। जैसे हम पर में, शरीर में एकपने के, संस्कार मजबूत करते जा रहे हैं। उस संस्कार को तोड़ने के लिए शरीर से भिन्नपने के संस्कार पैदा करने के लिए उतनी ही तीव्र चेष्टा करनी होगी। निरन्तर आत्मा के भिन्नपने की भावना भानी पड़ेगी, वह भी उतनी ही गहराई से जितनी शरीर में अपनेपने की भावना भायी है। तब वे संस्कार टूटेंगे इसी का नाम निर्जरा है। एक कांटा चुभा हुआ है अगर उसको निकालना है तो सुई को कांटें की लम्बाई से गहरे ले जाकर निकालना होगा। शरीर के एकत्वपने के संस्कार को तोड़ने के लिए उससे ज्यादा गहरा मजबूत संस्कार शरीर से भिन्नता का चाहिए। हम उतना पुरुषार्थ नहीं करते, तब पहला संस्कार नहीं टूटता यही कर्म का सिद्धान्त (Theoy) है। मिथ्वात्व को तोड़ने की भांति ही राग का संस्कार मेटने के लिए भी उतना जोरदार पुरुषार्थ चाहिए तब यह राग मिटेगा। मान लीजिये कि किसी व्यवित को 'साला' कहने की आदत पड़ गई। अब वह आदत से लाचार हो गया और चाहे अनचाहे, जाने अनजाने 'साला' निकल जाता है। जब एक बार 'साला'

Scanned by CamScanner

निकलता है तो पहले की आदत अथवा संस्कार को फिर मजबूत कर देता है। अगर वह ज्यादा मजबूत हो जाता है तो जीव उस संस्कार के आधीन हो जाता है, उस संस्कार को मेटने के लिए उसका विरोधी उससे भी ज्यादा मज़बूत संस्कार पैदा करना होगा। शरीर के साथ एकपने के संस्कार को, मिथ्यात्व के संस्कार को तोड़ने के लिये जिस विरोधी संस्कार की जरूरत पड़ती है उसी का नाम आत्मानुभव है जिससे पहले वाला संस्कार मिटे और नया नहीं आए तभी संवर और निर्जरा होती है।

इससे यह निश्चित हुआ कि यह जीव अपनी शक्ति के अनुसार अपना बचाव कर सकता है। यह कर्म को ज्यादा निमित्त बनावे अथवा कम बनावे, यह उसी पर निर्भर है इसलिए यहां भी इसकी स्वाधीनता है।

इसी सन्दर्भ में पं० टोडरमल जी के तीन कथन उद्धृत करते हैं :

१. "अघातियां कर्मों के निमित्त से बाहरी सामग्रीं का सम्बन्ध बने हैं—यावत् कर्म का उदय है तावत् बाह्य सामग्री तैसे ही बनी है।

२. "काहू पुरुष के सिर पर मोहन धूलि परी है तिसकरी सौ पुरुष बावला भया—···बावलापना तिस मोहन धूलि ही करीं भया देखिए है।"

३. "जैसे सूर्य के उदयकाल विषैं चकवा चकवीनि का संयोग होय, तहां रात्रि विषै —···—सूर्यास्त का निमित्त पाय आप ही

Scanned by CamScanner

विछुरै है ऐसा हो निमित्त नैमित्तिक बनि रह्या है तैस ही कर्म का निमित्त नैमित्तिक भाव जानो ।"

पहला कथन अघाति कर्मों के विषय में है, दूसरा उदाहरण मोहकर्म की अपेक्षा है। इसी बात को ऊपर की चर्चा में 'खिचाव' नाम देकर विचार किया गया है। तीसरा उदाहरण भी कर्म के निमित्त नैमित्तिक संबंध के के बारे में है और स्वतः स्पष्ट है।

पं० जी ने मोक्षमार्गप्रकाशक के नवम अध्याय में निमित्त के बारे में ऐसा कहा कि "एक कारण तो ऐसे है जाके भए कार्य सिद्धि ही होय जैसे सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता। कोई कारण ऐसे हैं जाके भए बिना तो कार्य न होय और जाके भये कार्य होय या न भी होय जैसे मुनि लिंग धारे बिना·····। कई कारण तो ऐसे हैं जो मुख्यपने तो जाके भए कार्य होय अर काहू के बिना भए भी कार्य सिद्धि होय जैसे अनशनादि बाह्य तप।" यहां पर भी साधन में कारण का उपचार करके साधन को कारण कहा गया है। अतः उसको साधन ही मानना चाहिए, कारण नहीं। इसी बात को लेकर पं० जी ने निश्चय व्यवहारालबी के कथन में कारणपने का निषेध करके साधनपने की स्थापना की है। ऐसा ही प्रवचनसार में चरणानुयोग चूलिका के शुरू में साधनपने को स्थापना भी की और साधन की परिभाषा भी रखी कि—"तेरे प्रसाद सें अपने स्वरूप को प्राप्त कर लूं।" वहां पर वह प्राप्त करा दे अथवा उससे प्राप्त हो जाए इन दोनों बातों का निषेध करके यह कहा गया है कि मैं प्राप्त कर लूं तेरे प्रसाद से अर्थात तेरा अवलम्बन लेकर मैं प्राप्त कर लूं। यह परिभाषा सभी

Scanned by CamScanner

निमित्तों के लिए ठीक बन जाती है। अतः निमित्त कर्त्ता नहीं, कराता नहीं, निमित्त से होता नहीं, परन्तु जिसका अवलम्बन लेकर हम कार्य करते हैं वह निमित्त नाम पाता है, यही परिभाषा बनती है। कर्मों में भी (मोहादिक में) चुंबक की तरह खिचाव तो मानना है परन्तु कार्य हमारी आत्मशक्ति के अनुसार ही कम ज्यादा होता है। जब आत्मशक्ति कम है तब कर्म का तीव्र उदय है जब आत्म-शक्ति ज्यादा है तो कर्म का मंद उदय है।

अगर कोई कहे कि उपादान उस समय की अपनी पर्याय-योग्यता के अनुसार परिणमन करता है, वहां निमित्त के सहयोग का क्या सवाल है ? इसका उत्तर है कि लंगड़े आदमी की पर्याय-योग्यता लकड़ी का सहारा लेकर चलने की है। भले-चंगे आदमी की योग्यता निरालम्बन चलने की है इसलिए पर्याययोग्यता कहने में भी निमित्त सापेक्षता गर्भित है।

इसी सन्दर्भ में एक अन्य प्रश्न उठता है कि 'जो भाव रागरूप है, बंध का कारण है वह वीतरागता का साधन कैसे हो सकता है ? अतः शुभोपयोग बंध का ही कारण है।' इसका समाधान है कि यद्यपि शुभोपयोग बंध का कारण है, वीतरागता का कारण नहीं है। तथापि वह वीतरागता का साधन अवश्य हो सकता है। उदाहरण के लिए व्यापारिक फर्मों द्वारा किया जाने वाला विज्ञापन का खर्चा। विज्ञापन खर्च-खर्च होते हुए भी कमाई का कारण नहीं हैं, परन्तु कमाई का साधन अवश्य है। इन्कम- टैक्स वाले भी इसको कमाई का साधन मानते हुए इस पर टैक्स नहीं लगाते, इसके द्वारा विज्ञापन

Scanned by CamScanner

के माध्यम से बिक्री बढ़ाकर अधिक मुनाफा किया जा सकता है। इसी प्रकार सच्चे देव-शास्त्र गुरु के आश्रित शुभोपयोग यद्यपि बंध का कारण है, तथापि आत्मभावना से प्रेरित होके करने से वीतरागता का साधन भी अवश्य है।

पं० टोडरमल जी ने मोक्षमार्ग-प्रकाश के नौवें अध्याय में लिखा है कि अणुव्रत/महाव्रत होने से देशचरित्र/सकलचारित्र नहीं होता, परन्तु अणुव्रत/महाव्रत के बिना भी देशचरित्र/सकलचारित्र नहीं होता। इसका अर्थ एक दम स्पष्ट है कि अणुव्रत/महाव्रत, जो चरणानुयोग का विषय हैं, वे देशचारित्र/सकलचारित्र को—जो कि कषाय की दो अथवा तीन चौकड़ियों के अभाव में होते हैं—पैदा नहीं कर सकते। परन्तु साथ ही यह भी ज्ञातव्य है कि उनके (अणु महाव्रत के) बिना भी देश/सकलचारित्र-रूप कषाय का अभाव संभव नहीं है। जिनके अणुव्रत/महाव्रत नहीं है उनके क्रमशः अप्रत्याख्यानाबरण और प्रत्याख्यानावरण कषायों का अभाव नहीं है, यह सुनिश्चित है।

पुनश्च, समयसार में कहा है कि वस्तुतः बंध तो अध्यवसान से होता है। तब प्रश्न उत्पन्न हुआ कि बाहरी परिग्रह का त्याग क्यों कराया गया ? उसका उत्तर दिया गया है कि अध्यवसान का आधार बाहरी वस्तु है, अतः आधार के त्यागपूर्बक आधेय का त्याग कराया है। इससे यही बात सिद्ध होती है कि यद्यपि बाहरी त्याग से अध्यवसान का त्याग नहीं होता—बाहरी त्याग अध्यवसान के त्याग कारण नहीं है—तथापि अध्यवसान का त्याग करने के लिए बाहरी

Scanned by CamScanner

त्याग जरूरी है, बाहरी त्याग को अध्यवसान के त्याग के लिए साधन अवश्य बनाया जा सकता है।

जो जीव पर्यायदृष्टि को पकड़कर अनेक प्रकार के विकल्पों को करने अथवा हटाने के झंझट में पड़े थे और निज आत्म-स्वभाव की ओर दृष्टि नहीं करते थे, उनको सन्मार्ग पर लाने के लिए आचार्यों ने द्रव्यदृष्टि की मुख्यता से उपदेश दिया कि हे जीव ! तू इन बिकल्पों का अथवा उनके साधनों/निमित्तों का जोड़ने/हटाने वाला नहीं है, तू तो मात्र ज्ञान का मालिक चैतन्य-तत्व है, अतः अपने को उसी-रूप देख !

इसके विपरीत, जो जीव द्रव्यदृष्टि को पकड़कर खोटे निमित्तों के सहयोग में पड़े हैं, खोटे विकल्पों से ग्रासित हैं परन्तु मानते हैं कि हम तो ज्ञाता-द्रष्टा हैं, और ऐसा मान कर स्वच्छन्दी हो रहे हैं, उनको आचार्यों ने पर्यायदृष्टि की प्रधानता से कहा कि हे जीव ! तू खोटे विकल्पों और उनके आधारभूत खोटे निमित्तों से बच सकता है, तथा साथ ही अच्छे निमित्तों को, सत्समागम को जुटा सकता है। ऐसा उपदेश देकर उन्हें स्वच्छन्दी होने से रोका।

इस प्रकार द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि दोनों ही दृष्टियों के अविरोध-रूप वस्तु स्वरूप की श्रद्धा/प्रतीति ही सही है. सम्यक् है, कल्याणकारी है, चूंकि सम्यक् वस्तुस्वरूप के अतिरिक्त कल्याण-कारी और क्या होगा ? आज की विडम्बना यह है कि हरेक व्यक्ति वस्तु को अपनी तरफ खींचना चाह रहा है और सभी पक्ष के व्यामोह में पड़े हैं। किन्तु वस्तु तो चूंकि पक्षातीत है अतः किसी

Scanned by CamScanner

भी पक्षधारी के हाथ वह लगने वाली नहीं ! पक्ष के व्यामोह से उबर कर जो विरला द्रव्य-पर्यायात्मक वस्तु को प्राप्त करने की सम्यक् चेष्टा करेगा उसे वह प्राप्त होगी ही, इसमें सन्देह नहीं है।

पर्यायदृष्टि और द्रव्यदृष्टि दोनों दृष्टियां एक-दूसरे की अपेक्षा रखे हुए होती हैं। द्रव्यदृष्टि को अपेक्षा चरणानुयोग को ज्ञान का विषय कहा है और पर्यायदृष्टि की अपेक्षा चरणानुयोग का विषय आचरण-योग्य है। यदि चरणानुयोग को मात्र ज्ञान का ही विषय मान लेंगे, आचरण का नहीं मानेंगे तब न तो चरणानुयोग की उपयोगिता प्रकट होगी और न जीव में उसको धारण करने का उत्साह बनेगा।

निमित्ताधीन दृष्टि का अर्थ है मिथ्यादृष्टि, क्योंकि ऐसी दृष्टि वाला जीव मानता है कि निमित्त ने ऐसा कर दिया, निमित्त ने वैसा कर दिया, इत्यादि। मैं, मेरा सब कुछ यहां तक कि मेरा मोक्ष मार्ग भी निमित्त के आधीन है। अतः अपने दुख-सुख का, राग-द्वेष का कर्त्ता निमित्तों को ही मानता है। चूंकि संसार में मेरे सभी पर है, अतः सभी निमित्त हो सकते हैं। इसलिए समस्त जीव, अजीवादि के प्रति उसके चित्त में राग-द्वेष की सम्भावना बनी रहती है, वही अनंतानुबंधी कषाय है। इसलिए जो निमित्त को कर्त्ता मानता है वह मिथ्यादृष्टि बना रहता है। आगम में करणानुयोग और चरणानुयोग में निमित्त को कर्त्ता कहकर वर्णन किया गया है वह उपचार कथन है, अर्थात् निमित्त में कर्त्तापने का उपचार है, वस्तुतः निमित्त कर्त्ता नहीं है। इसी को लेकर समयसार में ऐसा कहा है कि जो ऐसे

Scanned by CamScanner

मानता है वह सांख्यमतो है चाहे वह अरहंतके मत का मानने वाला मुनि भी क्यों न हो।

व्यवहारी जीवों को समझाने के लिए आचार्यो ने व्यवहारी भाषा में वर्णन किया है, नहीं तो व्यवहारी लोगों को समझ मैं नहीं आ सकता था। जैसे कोट को छोटा हो गया' ऐसा कहना यह लौकिक भाषा है। वास्तब में तो पहनने वाला मोटा हो गया, यह सही भाषा है। वैसे ही निमित्त को कर्त्ता कहने की लौकिक भाषा है। सभी इसी भाषा का इस्तेमाल करते हैं कि उसने ऐसा कर दिया, मैंने ऐसा कर दिया, आदि। लौकिक भाषा का अभिप्राय तो हम ठीक समझ जाते हैं परन्तु उसी भाषा का उपयोग जब परमार्थ के संदर्भ में आचार्य करते हैं तो हम उसका सही अभिप्राय न ग्रहण करके शाब्दिक अर्थ ग्रहण कर लेते हैं, वही हमारी अज्ञानता का मुख्य कारण है। अगर दो द्रव्यों की पर्याय का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं मानेंगे तो संसार भी नहीं बनेगा और उसका अभाव भी नहीं बनेगा। अगर उसमें कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध मान लिया तो कभी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी।

अन्त में निचोड़ यह निकला कि धर्म अधर्म आकाश काल का उस प्रकार का निमित्तपना है जहां उपादान जिसरूप परिणमन करे उसी के अनुकूल निमित्त उपस्थित रहता है।

(२) अन्य पुद्लादि अथवा अन्य जीवादि के साथ जो निमित्त-पना है उसमें उपादन उनको अगर निमित्त बनावे और जिस कार्य के लिए निमित्त बनावे उसमें वे सहयोगी होते हैं। वे सहयोग नहीं देते, उपादान सहयोग लेता है। पुद्ल का पुद्ल के साथ अपने आप

Scanned by CamScanner

सहयोग मिल जाता है अथवा किसी के द्वारा सहयोग मिलाया जाता है। जबकि जीव आपही निमित्त मिलाता है या स्वतः निमित्त मिल जाता है और निमित्त को आपही निमित्त बनाता है।

(३) मोहादिक कर्मों के निमित्तपने में जितना जीव में आत्मबल है उतना स्वलक्ष के द्वारा कर्मफल से बच सकता है जितना पर लक्ष्य रहा उतना कर्मफल मिलता है। यह जीव क्रम-क्रम से आत्म-बल बढा भी सकता है।

इस प्रकार तीनों जगह जीव की स्वतंत्रता कायम होती है।

## भजन

१ मोक्ष के प्रेमी हमने कर्मों से लड़ते देखे।
मखमल पे सोने वाले भूमि पै पड़ते देखे।
२ सरसों का दाना जिनके, विस्तर में चुभता था।
काया की सुध नाहीं, गीधड़ तन भखते देखे।
३ बौद्धों का जोर था जब, निकलंक देव देखे।
धर्म को नहीं छोड़ा, शीश तो कटते देखे।
४ सेठ सुदर्शन प्यारा, रानी ने फंदा डाला।
शील को नहीं छोड़ा, सूली पै चढते देखे।
५ पारस नाथ स्वामी, तद्भव मोक्ष गामी।
कर्मों ने नहीं छोड़ा, पत्थर सिर पड़ते देखे।
६ अर्जुन व भीम जिनके बल का न पार पाया।
आत्म उन्नति के खातिर अग्नि में जलते देखे।
७ भोगों को छोड़ो चेतन, जीवन ये वीता जाए।
आशा न पूरी होगी, अर्थी पै चढ़ते देखे॥

**पं० मागींलाल जी 'कोलारस'**

Scanned by CamScanner

# धर्म का सार

जन धर्म का मूल उद्देश्य मानव बनाकर महा मानव बनाना है। यह आत्मिक विकारों क्रोध, मान; माया, लोभ के अभाव से ही संभव है। महा मानव बनने के पहले सही माने में अच्छा मानव होना जरूरी है। यह इसकी स्वतन्त्रता है कि अपने को चाहे पशुता की तरफ ले जावे अथवा मानव से महामानव होने को तरफ। जब यह पशुता की तरफ जाता है तब विकारों की तीव्रता होती है, विकारों के आधीन होकर यह अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए दूसरे का भला बुरा नहीं सोचता है। दूसरे का बुरा करके भी अपने स्वार्थ की पूर्ति करता है। हत्या, चोरी, व्यभिचार झूठ, छल, कपट, हिंसा करता है तब स्व तथा परके सताप का कारण बनता है। मनो-विकारों के विना कोई भी शारीरिक बाचनिक दुष्कर्म संभव नहीं है। यह अपनी सग्रहवृति का ही परिणाम है। जिसकी पूर्ति करने को अन्याय रूप आचरण करता है जब उसकी पूर्ती नहीं होतो है तब मायाचारी करता है। उसकी पूर्ति में बाधा आने पर क्रोध करता है और पूर्ति होने पर मान करता है इससे यह जाना जाता कि इनकी उत्पत्ति की जड़ हमारी सग्रहवृति है। भगवान महावीर ने खोजा

Scanned by CamScanner

कि वे विकार क्यों होते हैं तो पाया कि समस्त विकारों की जननी तृष्णा है। प्रिय को प्राप्त करने कीं तृष्णा, अप्रिय को हटाने की तृष्णा अपने को ऊचा दिखाने की तृष्णा । उपर-उपर होश बने रहने पर भी हम अपने इन विकारों के प्रति वेहोश पड़े हैं।

जब तक मैं और मेरे की सकीर्णता में आवद्ध रहता है तव तक यह किसी की हानि करने में नहीं सकुचित होता है। मैं से आगे बढ़ता है तो मेरा का दायरा आता है और आगे बढ़ता है तो मेरा कुल, मेरी जाति मेरा सम्प्रदाय मेरा धर्म में अटल कर रह जाता है। जीव मात्र में एकपने की पुष्टि होती है तब ये परिधियां टूटती है। इसका उपाय है स्वानुभुतियों के स्तर पर प्रगट हुआ सत्य का अनुसंधान ही सही यात्रा है। हमारे अतः-गहराइयों में जो राग द्वेष और मोह समाया हुआ है उसे दूर करे। राग द्वेष मोह हीं पाप का अन्धकार है इसको हटना धर्म का प्रकाश है। इसके लिये निरतर सावधान रहने की, आत्म निरक्षण करने की दरकार है। आत्म धर्म को छोड़कर कोई शरण, आश्रय, सहारा है ही नहीं जो कि इसको सुखी बना सके।

धर्म का मूल दुख मुक्ति है जो चित्त विशुद्धि से होती है। जब जब हमारा मन विकार विमुक्त और निर्मल होता है तब हम दुख से विमुक्त हो जाते है तब तब स्वभाविक स्नेह सद्भावना मैत्री और करुणा से भर उठता है तब हम स्वयं तो सुख शान्ति का अनुभव करते ही हैं औरों को भी सुख शान्ति का कारण बनते है।

Scanned by CamScanner

मानव मात्र हो नहीं प्राणी मात्र के हित सुख में यह अपना हित सुख देखता है। किसी भी प्राणी के हित सुख का हनन करके अपने हित की कुचेष्टा करना तो दूर ऐसा चिन्तन तक नहीं करना।

धर्म के अभ्यास से जीवन स्तर ऊचा नहीं उठे, हमारा लोक ब्यवहार नहीं सुधरें हम अपने लिए तथा औरों के लिए मंगलमय जीवन नहीं जी सकते तो ऐसा धर्म किस काम का। धर्म इसलिए है कि हमारे पारस्परिक सम्बन्ध सुधरे और परिवार समाज, राष्ट्र और अन्तर राष्ट्रीय सारे पारस्परिक सम्बन्ध सुधारे।

धर्म सर्वभौन है इसलिए धर्म का सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म किसी सम्प्रदाय के थोथे निष्प्राण रीति रिवाज पूरे करने का नाम नहीं है। धर्म मिथ्या अंध विश्वास, रुढि परम्परा का शिकार होकर किसीं लकीर का फकीर बनने के लिए नहीं। धर्म का पालन तो अपने जीवन को स्वस्थ मंगलमय बनाने के लिये है। जो आत्म कल्याण और पर कल्याण का कारण है। धर्म का पालन अपने लिए होते हुए भी सब लोगों के हित-सुख मंगल कल्याण के लिए है। धर्म पालन का मुख्य उद्देश्य है हम आदमी, अच्छे आदमी बने। धर्म का सार सदाचार है भाईचारा पर उपकार है अहिंसक जीवन है। धार्मिक जीवन तो फूल के समान है जो निज में सुगध-मय और दूसरों के लिए भी सुगंध देने वाला है।

धर्म का सम्बन्ध आचरण से है। मात्र मन्दिर चले जावे रात्रि भोजन न करे पानी छानकर पीले इतने मात्र से व्यक्ति धर्मात्मा नहीं होता। धर्मात्मा होने के लिए अपने आचरण को सही दिशा में मोड देना जरूरी है जो अन्याय अनाचार अभक्ष-भक्षण से रहित सर्व जीवों के मंगल और कल्याण की भावना से निहित हो, सत्य क्षमा, संतोषमय हो।

Scanned by CamScanner